लेखक परिचय

डॉ. हरिओम

जीन्द (हरियाणा) के ग्रामीण आंचल में 10 जनवरी 1959 को जन्में तथा कृषक परिवार की पृष्ठभूमि में आरम्भिक शिक्षा के बाद पी. एच.डी. (सस्य विज्ञान) की डिग्री चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से प्राप्त की। डिग्री हेतू किए गए संकर धान पर उत्तम शोध कार्य के लिए डॉ. वी.डी. कश्यप स्वर्ण पदक से सम्मानित।

हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के सस्य विज्ञान विभाग में वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत्त हैं। पिछले 24 वर्षों से मुख्य रूप से धान–गेहूं फसल चक्र, फसल प्रणाली व कृषि प्रणाली के उत्पादन सम्बन्धी शोध कार्य में संलग्न हैं। साथ ही देश एवं विदेश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में 150 से अधिक शोध पत्रों/लेखों और 6 पुस्तकों/बुलेटिन के लेखन में योगदान किया है। अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार 'नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट' में श्रेष्ठ शोध पत्र प्रस्तुति हेतू सम्मानित।

आध्यात्मिक पुनर्जन्म के लिए 14 नवम्बर 1986 को राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज के चरण कमलों में पहुंचे और दीक्षा ग्रहण की। सतगुरू की आज्ञा से 1 फरवरी 1998 से आध्यात्मिक कार्य के मिशन में संलग्न हैं। अध्यात्म को वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत किया और 18 आध्यात्मिक पुस्तकों की रचना की।

टूटते रिश्ते
बढ़ता अंधविश्वास व
अध्यात्म

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र
(हरियाणा)

टूटते रिश्ते
बढ़ता अंधविश्वास व
अध्यात्म

सर्वाधिकार सुरक्षित
जून 2007

डा० हरिओम
वरिष्ठ वैज्ञानिक

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र
(हरियाणा)

विषय - वस्तु

क्रम सं.	विषय	पष्ठ सं.
1.	आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य	1
2.	मनुष्य की बढ़ती संवेदनहीनता	5
3.	अंधविश्वास की नींव पर टिका हिन्दू समाज	12
4.	जिज्ञासुओं के लिए प्रश्न	19
5.	पुस्तक सूची	20

राधास्वामी।

राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय।

राधास्वामी।

समर्पित

राधास्वामी दयाल परम् संत

सतगुरू ताराचन्द जी महाराज

के चरण कमलों में।

आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य

राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज की प्रेरणा से हमने संकल्प लिया है कि आध्यात्मिक कार्यों के लिए किसी से भी पैसों की सेवा नहीं ली जाएगी और किसी आश्रम की स्थापना नहीं की जाएगी क्योंकि मेरा विश्वास है कि यदि कोई आध्यात्मिक सूर्य उदय होना चाहता है तो वह इतना सक्षम है कि वह अपना रास्ता स्वयं ही बनाएगा, यह उसकी आवश्यकता है और मजबूरी भी। यदि वह स्वयं की अभिव्यक्ति के लिए किसी धन और आश्रमों का मोहताज है तो मुझे ऐसा अध्यात्म स्वीकार नहीं है।

व्यक्ति का धन दीनहीन की सेवा के लिए हो, गुरू की विलासिता के लिए नहीं। आज के अध्यात्म का मार्ग यदि झोंपड़ी की तरफ नहीं जाता है तो वह गुरूओं के आलीशान महलों की तरफ तो कतई नहीं जा सकता है। सर्वभूतों, दीन-दुःखियों और अपने चारों तरफ के वातावरण में ही सतगुरू के दर्शन हों। मनुष्य का हृदय ही आश्रम हो जो हर जीव-अजीव को शांति दे और उसके लिए सुख और परोपकार की कामना करे। व्यक्ति का घर ही आश्रम हो जहां पर माता-पिता और आगन्तुक परमात्मा तुल्य हों। शान्ति, विकास और सुरक्षा का आधार कम्यून, संघ या कोई गठजोड़ नहीं बल्कि स्वयं व्यक्ति हो जो समाज व वातावरण की जरूरत को समझे। व्यक्ति के विकास से समाज और देश के विकास का मार्ग स्वयं ही निर्मित होगा। यही आध्यात्मिक साम्यवाद है जो व्यक्ति एवं घर से आरम्भ होता है और विश्वमानव या महामानव के निर्माण पर इसकी पूर्ति होती है।

अध्यात्म का कार्य करने के लिए और उसमें जीने के लिए हमें किसी मन्दिर, मस्जिद, चर्च या गुरूद्वारे की आवश्यकता नहीं है। इस कार्य के लिए केवल एक ही इन्फरा-स्ट्रक्चर या व्यवस्था चाहिए और वह है मनुष्य रूपी शिवालय, मनुष्य रूपी देवालय। मिट्टी के एक तत्व से बने तीर्थ स्थान, मूर्ति या शास्त्र इसकी आवश्यकता नहीं हैं बल्कि परमात्मा के जीवन से भरपूर पंचतत्व से निर्मित मनुष्य का शरीर चाहिए जिसके अन्दर स्वयं सष्टि का स्वामी निवास करता है। मनुष्य के मन और हृदय में सारे देवी-देवता, सारे तीर्थ व शास्त्र समाए रहते हैं और यहीं से इन सभी की पैदायश है।

बुल्लेशाह कहते हैं-

मन्दिर ढ़ाहदे मस्जिद ढ़ाहदे, ढ़ाहदे जो कुछ ढ़हंदा ए।
पर दिल किसी दा न ढ़ाहवी रब दिलां विच रहंदा ए।।

मेरा ऐसा मानना है कि यदि मनुष्य के अन्दर आध्यात्मिक सूर्य अर्थात् विज्ञानमय या आनन्दमय पुरूष की एक किरण भी संचित हो जाती है तो वहां पर हर तरह की बरकत स्वतः ही बहने लगती है। वह धरती सबको अपनी तरफ खींचने लगती है। सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक व आर्थिक चेतना का विकास होने लगता है। किसी समाज में यदि एक भी व्यक्ति ऐसी अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो वह समाज ही नहीं बल्कि देश भी उन्नति के शिखर पर पहुंचता है। ऐसे समाज या देश को हानि पहुंचाना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। उत्थल-पुत्थल अवश्य आती हैं लेकिन हर उत्थल-पुत्थल जीवन की नई-२ सम्भावनाओं व चुनौतियों को जन्म देती है। कर्मयोगी समाज के लिए यही सम्भावनाएं और चुनौतियां वरदान बनती हैं और सुनहरे भविष्य का निर्माण करती हैं।

मनुष्य के लिए शारीरिक या मानसिक धर्म अलग-२ हो सकते हैं लेकिन आत्मा या रूह का केवल एक ही धर्म हो सकता है और वह है प्रेम। सच्चा प्रेम मनुष्य को जोड़ता है तोड़ता नहीं। प्रेम अनहद है जो हर हद को पार करने का सामर्थ्य रखता है। प्रेम की कोई जात नहीं है, प्रेम किसी धर्म या सम्प्रदाय का मोहताज नहीं है। वह यह नहीं पूछता कि सामने वाला व्यक्ति हिन्दू है या मुसलमान, सिख है या ईसाई, ब्राह्मण है या शुद्र। वह तो केवल देना जानता है, लेना उसकी फितरत ही नहीं है। अतः इस भौतिक संसार में प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही मार्ग और प्रेम ही मंजिल है। इस मार्ग में किसी अवतार, पैगम्बर या मसीहा की बाहरी पूजा के लिए कोई स्थान नहीं है लेकिन इनके आदर्शों का अनुसरण करके हमें इन्हें अपने ही अन्दर जीवित करना होगा। इनकी दैविक चेतना का अनुभव हमें अपनी ही आत्मा के अन्दर करना होगा तभी विश्व गांव का सपना साकार हो सकेगा और धरती पर स्वर्ग बनाने की इच्छा की प्राप्ति हो सकेगी। वरना धर्म और समाज की ये दीवारें मनुष्य को हमेशा आपस में बांटती ही रहेंगी।

प्रेम सार्वभौमिक धर्म है, जिसे मनुष्य के साथ-२ पशु और पौधा भी

मानता है। जीव-अजीव की यह सारी सष्टि इसी प्रेम के खिंचाव की शक्ति के कारण ही भिन्न-२ अस्तित्वों में बंटी हुई है और हर एक अस्तित्व अपनी पूर्ति के लिए दूसरे अस्तित्व के चारों ओर चक्कर काट रहा है। पौधा, पशु, पक्षी, जीव-अजीव हमारे किसी धर्म या शास्त्र को नहीं जानते, वे तो बस प्रेम की भाषा को पहचानते हैं। अतः प्रेम का धर्म (धर्मे-सीना) ही व्यावहारिक धर्म है जो मनुष्य को शाश्वत धर्म या धर्मे-हकीकत से वाकिफ करवाता है। इसलिए मानव कल्याण के इस यज्ञ में हमें किसी धन या द्रव्य की आवश्यकता नहीं है बल्कि प्रेम व पवित्र विचार की आहुति चाहिए और उसी के प्रति संकल्प की आवश्यकता है।

माता-पिता और परिवार से मिली आध्यात्मिक पष्ठभूमि ने हमेशा मेरा मार्गदर्शन किया है और जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है। आध्यात्मिक मिशन का यह कार्य मेरी पत्नी और आध्यात्मिक सहयोगी श्रीमती बिमल की प्रेरणा से आरम्भ हुआ। मेरे सतगुरू राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज ने इस प्रेरणादायक चिंगारी को अपनी तवज्जह और दया के हाथ से ध्यान-भजन की हवा देकर ब्रह्म अग्नि में परिवर्तित किया जो हर समय योगयज्ञ की ज्योति (नूर) बनकर अन्दर जलती रहती है और अनहद नाद बनकर खुदाई कलमा (वर्ड) सुनाती रहती है। सम्भवतः इसी आध्यात्मिक चिंगारी को आंखों में देखकर मेरे सतगुरू शहनशाह ने मेरा नामकरण किया और मुझे 'प्रकाश' के नाम से पुकारने लगे। तब से वे हम दोनों को बिमलप्रकाश कहकर पुकारते थे। आज सत्संग का यह कार्य सतगुरू-मुर्शिद की दया और मेहर से ही आगे बढ़ रहा है और इसमें बिमल का विशेष योगदान है। आध्यात्मिक दष्टि से देखा जाए तो बिमल का ध्यान हमेशा ही सारी संगत में अव्वल रहा जिसकी चर्चा मेरे सतगुरू समय-समय पर संगत के बीच में करते रहते थे।

यह मैं उन लोगों के लिए लिख रहा हूं जो स्त्री को तुच्छ व भोग की वस्तु समझते हैं और कहते हैं कि औरत आध्यात्मिक ऊँचाई को नहीं छू सकती है। मेरे सतगुरू कहते थे कि परमात्मा ने दो ही जातियां बनाई हैं, एक स्त्री व दूसरी पुरूष। यही दो जातियां पुरूष और प्रकति बनकर सष्टि का सजन करती हैं। जब स्त्री और पुरूष स्वयं का आधा अस्तित्व

एक-दूसरे को समर्पित कर देते हैं तो ये अर्धनारीश्वर बनकर एक दूसरे का अंग-प्रत्यंग होकर कार्य करते हैं और एकता के सूत्र में बंध जाते हैं। प्रकति जब अपना पूर्ण समर्पण कर देती है तो यह परामाया या पराप्रकति या राधा बनकर पुरूष (स्वामी) के अन्दर समा जाती है और पुरूष पराप्रकति या पराशक्ति बनकर अपने परम् शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है जहां पर लिंग-भेद, जाति-पाति और धर्म-सम्प्रदाय सभी गुण व आकार अस्तित्वहीन हो जाते हैं। ऐसे ब्रह्मरूप या सतगुरू रूप का अनुभव जो भी व्यक्ति करता है वही ब्राह्मण कहलाता है। कुण्डलीनी शक्ति के सुदर्शन चक्र और आध्यात्मिक सूर्य व चन्द्रमा के दर्शन स्वयं के अन्दर करता है वही सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी कहलाता है। ऐसे आत्मिक स्रोत के आगे सारी भौतिक सत्ता की ऐश्वर्यता नतमस्तक हो जाती है और ऐसे स्रोत का मार्ग यदि किसी सांसारिक विलासिता का मोहताज है तो यह एक विडम्बना है। मैं यह नहीं कहता कि मुझे यह सब प्राप्त हो गया है बल्कि इस आध्यात्मिक लक्ष्य के प्रति मैं प्रयासरत हूं ताकि पूरी मानवता इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहभागी बन सके। अतः इस प्रयास रूपी यज्ञ में मैं आप सब को प्रेम और पवित्र विचार की आहुति देने के लिए आमन्त्रित करता हूं। मुझे विश्वास है कि एक दिन यह आध्यात्मिक लक्ष्य अवश्य ही फलित होगा और पथ्वी पर रहने वाले मानस का अतिमानसीकरण होगा।

प्रस्तुत संकलन इसी आध्यात्मिक मिशन की जागति व पूर्ति के लिए किया गया है। हमें आशा है कि यह संकलन एक क्रियात्मक, रचनात्मक और दिव्यात्मक अध्यात्म को पाठकों के हृदय में प्रज्जवलित करेगा और आत्मिक धर्म तथा सच्चे अध्यात्म की खोज करने में सहायता करेगा।

राधास्वामी।

बिमलप्रकाश

मनुष्य की बढ़ती संवेदनहीनता

आज मनुष्य के पास सुविधाओं का अम्बार लग गया है। वह तेज गति से विकास की सीढ़ियां चढ़ रहा है। धन-दौलत का स्वामी बन गया है। बाहरी सुख की खोज के लिए दिन-रात एक किए जा रहा है लेकिन इसके साथ-2 उसका मन भी बेचैन हो गया है, वह अकेला पड़ने लगा है, मानसिक बीमारियां बढ़ रही हैं। भय और असुरक्षा का वातावरण पनप रहा है। परिवार और समाज टूट रहे हैं। एक दूसरे के लिए प्यार व समर्पण की भावना घटते जा रहे हैं। युवा वर्ग इतनी आकांक्षाओं से भरा हुआ है कि परिवार जैसी जिम्मेदारियों से घबराने लगा है। यही कारण है कि संसार के विकसित देशों की जनसंख्या घटने लगी है, इसलिए उन्हें बच्चे पैदा करने के लिए प्रेरित किया जा रहा है। मानसिक बेचैनी के कारण विश्व आतंकवाद जैसी समस्याओं से जूझ रहा है। धार्मिक कट्टरपन और अंधविश्वासों ने इन समस्याओं को और भी जटिल बना दिया है।

अभी हाल में दिल्ली के निकट एक नगर में मनुष्य की क्रूरता की अति भयानक तस्वीर सामने आई। कुछ व्यक्तियों ने मिलकर अपनी वासनाओं की संतुष्टि के लिए बहुत से बच्चे व लड़कियों को मौत के घाट उतार दिया और मकान के पीछे नाले में दबा दिया। दिल्ली के ही निकट एक दूसरी घटना में थोड़े से पैसों के लालच में कई लोगों को सीरियल किलर ने मौत के घाट

उतार दिया। नए साल की खुशियां मनाने के लिए फ्रांस के अंदर हजारों कारों को तोड़कर उनमें आग लगा दी गई। इस तरह की घटनाएं हर रोज हमारे सामने आ रहीं हैं।

यह सब क्यों हो रहा है? इसका कारण है मनुष्य के बाहर और अन्दर पनपता असंतुलन। बाहर सुविधाओं की तह पर तह लगती जा रही हैं लेकिन अन्दर का खालीपन बढ़ता जा रहा है। बाहर की दौलत से वह अमीर अवश्य बन गया है लेकिन आत्मिक दौलत से गरीब हो गया है। वह अपने निकट इतने सुख-सुविधाएं जुटाना चाहता है कि उसे किसी की भी जरूरत न रहे, उसे किसी के सामने भी हाथ न पसारना पड़े। वह सम्राट बनना चाहता है, सर्वसमर्थ बनना चाहता है, वह हर मामले में सबसे श्रेष्ठ होना चाहता है लेकिन आत्मिक मूल्यों की उसे परवाह नहीं है। इतिहास गवाह है कि जो भी व्यक्ति महान बना है, चाहे वह चक्रवृति सम्राट हो या बेजोड़ राजनीतिज्ञ या सफलतम व्यापारी, उसने अपने कुशल व्यवहार और भलमानसी से अपने चारों तरफ का वातावरण विकसित किया है, एक मित्र वर्ग तैयार किया है जो उसकी बातों पर विश्वास करे, उसके बुरे समय में उसकी सहायता करे और आवश्यकता पड़ने पर अपने प्राणों की आहुति देने में भी संकोच न करे।

प्रकृति का नियम है कि यहां कोई भी व्यक्ति अकेला होकर नहीं चल सकता है। हर व्यक्ति को जीने के लिए हवा, पानी,

अन्न, आश्रय आदि की आवश्यकता है। पेड़-पौधों, पशु, पृथ्वी, सूर्य की आवश्यकता है इनके बिना वह पलभर भी जिन्दा नहीं रह सकता है। प्रकृति का सारा कार्य लेन-देन पर टिका हुआ है। जो भी स्रोत है वह स्वयं को जिन्दा रखने के लिए दूसरे स्त्रोतों से कुछ न कुछ ले रहा है और आवश्यकतानुसार उनकी सहायता भी कर रहा है। मनुष्य पेड़-पौधों, पृथ्वी से मदद लेकर जिन्दा है तो पृथ्वी सूर्य की मेहरबानी से टिकी हुई है। सूर्य के अन्दर की एक भी हलचल इसके जीवन की तबाही कर सकती है। हमारा यह सूर्य किसी दूसरे सूर्य के चक्कर लगाता हुआ उससे जीवन प्राप्त कर रहा है तो वह सूर्य और उस जैसे अरबों सूर्य एक दूसरे का चक्कर लगाते हुए आकाशगंगा के सूत्र में पिरो दिए गए हैं। इसी तरह आकाशगंगाए भी लाखों मील की गति से एक दूसरे की परिक्रमा कर रही हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि यहां पर कुछ भी स्वयं पर निर्भर नहीं है। पूरे ब्रह्माण्ड का सिस्टम एक दूसरे सिस्टम पर टिका हुआ पूर्णता के साथ कार्य कर रहा है, फिर यह कैसे हो सकता है कि मनुष्य अकेला होकर चल सके और पूरी तरह स्वयं पर निर्भर हो सके। उसे किसी की आवश्यकता ही न रहे। ऐसी सोच अज्ञानता का शिखर है और मन की बहुत बड़ी विकृति है। जो भी व्यक्ति या सिस्टम प्रकृति के इस नियम की अनदेखी करेगा और स्वार्थी होकर केवल स्वयं या अपने परिवार तक ही सीमित रहेगा, वह निश्चय ही यहां समय आने पर अकेला पड़

जाएगा और अपनी बरबादी की कहानी वह स्वयं अपने ही हाथों से लिख देगा। यदि व्यक्ति को अद्वितीय बनना है, सर्वसमर्थ बनना है तो उसे अपने चारों तरफ के वातावरण को पालना ही होगा, उसका संरक्षण करना ही होगा तभी प्रकृति मां उसकी मदद कर सकेगी। यदि इस नियम की अवहेलना होगी तो कोई भी गुरू, भगवान, खुदा या ईश्वर हमारी मदद नहीं कर सकता है। यदि कोई ऐसा कहता है तो वह छलकपट के अतिरिक्त कुछ नहीं है। भगवान के नाम पर मात्र छलावा है, धोखा है, पैसे का व्यापार है। मनुष्य जब भी इस नियम की उपेक्षा करेगा उसे प्रकृति की क्रुरता की मार झेलनी होगी, तूफान या भुकम्प की त्रासदी का सामना करना ही होगा, यह अटल है।

हम यहां पर अकेले रहते हुए भी अकेले नहीं है। हमारा रिश्ता पूरे ब्रह्माण्ड के साथ है, सृष्टि के आदि के साथ है। जब सृष्टि की उत्पत्ति का पहला अंकुर फूटा उसी समय हमारा जन्म हो गया था। सृष्टि ने यहां तक आने के लिए जो भी यात्रा की उसकी यात्रा में जो भी पड़ाव आए, उन सब के अक्ष बीज रूप में मनुष्य के अन्दर पड़े हुए हैं। जब हम अपने अन्दर ध्यान केन्द्रित करते हैं तो ये सारी अवस्थाएं उजागर होने लगती हैं और यदि हम ध्यान की सारी अवस्थाएं पूरी कर जाएं तो आदि से अंत तक का अनुभव सूक्ष्म रूप से हमारे शरीर व मन में खुलने लगता है। सूर्य, चन्द्रमा, आकाशगंगाए अन्तर में ही दृष्टिगोचर होने लगती हैं। जीते-जी मृत्यु का अनुभव होने लगता है। जब ब्रह्म का

अनुभव खुलता है तो कबीर साहब कह उठते हैं-

कोटिक चंदा उगमियां कोटिक सूरजभान।
कोटिक दमके दामिनी पारब्रह्म दरम्यान।।

गुरू नानक कहते हैं-

सौ चन्दा उगमियां सूरज कई हजार।
इता चांदण होनियां गुरू बिन घोर अंधियार।।

जब अन्दर का दर्शन खुलता है तो सारी सृष्टि की आत्मा के साथ एकरूपता महसूस होने लगती है। प्रकृति के सारे रूप अपनी ही आत्मा के रूप नजर आने लगते हैं। ऋषि वामदेव के अन्दर का दर्शन जब खुला तो वे मंसूर की तरह कह उठे-अहम् मनुरभवं सूर्याश्य अहम् अर्थात् मैं ही सृष्टि को रचने वाला मनु हूं और मैं ही उसे पालने वाला सूर्य। मनुष्य के अन्तर्मुखी होते ही उसे सारी सृष्टि के साथ स्वयं का रिश्ता महसूस होने लगता है, उसके साथ एक प्रेममय संबंध स्थापित होने लगता है और जब ऐसा होता है तो फिर मनुष्य किस की हानि कर सकता है, किसे नुकसान पहुंचा सकता है।

आज हम बाहर की दुनियां और उसके सुखों में मन का सुख ढूंढ रहे हैं इसीलिए संसार की सारी वस्तुओं को अलग-2 करके देखते हैं, अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए उनका दोहन करते हैं और इस तरह से प्रकृति की सारी सम्पदा नष्ट हो रही है जिसका परिणाम मनुष्य की आने वाली संतति को भुगतना ही होगा। आवश्यकता है सारे वातावरण के साथ एक आत्मा का रिश्ता बनाने की, एक विश्वात्मा के साथ

जुड़ने की। ऐसा होने के बाद हमें वस्तुएं अलग-2 दिखाई नहीं देंगी बल्कि उनके अन्दर सबको जोड़ने वाली चेतना के दर्शन होंगे और हम सबके साथ शांतिपूर्ण सहवास कर सकेंगे लेकिन यह तभी सम्भव होगा जब बाहरी सम्पदा के साथ-2 आन्तरिक सम्पदा का भी संग्रह हो, अन्दर और बाहर का संतुलन बनाया जा सके। बाहरी दौलत और सुख-सुविधाओं को हम एक दूसरे के साथ बांट सकते हैं, खरीद सकते हैं, और इनकी तह पर तह लगा सकते हैं। एक वैज्ञानिक खोज का सुख सारी दुनियां उठा सकती है, उसमें सहभागी हो सकती है लेकिन आत्मिक दौलत को न तो हम दूसरे से खरीद सकते हैं, न उसे ट्रांसफर किया जा सकता है। सत्य को चुराया भी नहीं जा सकता, न ही उसे वसीयत बनाकर बांटा जा सकता है। वह तो वहीं प्रकट हो सकता है जहां आपसी प्रेम हो और एक दूसरे के प्रति समर्पण की भावना हो।

स्वयं की खोज ही मनुष्य के हृदय के अन्दर खालीपन को भर सकती है। बाहर का सारा संसार भी जीत लें, तब भी आन्तरिक खालीपन को भर पाना सम्भव नहीं है बल्कि हृदय की वासनाओं का पात्र बड़ा और बड़ा होता चला जाता है। इसीलिए सुकरात ने सत्य कहा है-स्वयं की खोज करो (Search Thyself), ईसा मसीह कहते हैं कि स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे अन्दर है (The Kindgom of God is within you)। भारतीय मनीषियों ने कहा है-तेरे घट के अन्दर नूर बाहर क्यूं भटकै भाई। अतः मनुष्य को शान्ति, सुरक्षा और विकास

की सीढ़िया चढ़ने के लिए अपने अन्दर और बाहर का संतुलन बनाकर चलना होगा।

आत्मिक अनुभव के बिना बाहर के संसार की समझ भी विकसित नहीं हो सकती है। सासांरिक सुख का भोग तभी अर्थपूर्ण हो सकता है जब आत्मिक सुख के स्रोत के साथ हमारा संबंध जुड़ जाए और उसके आनन्द की अनुभूति हो जाए। इसके साथ-2 मनुष्य को आत्मा की उस व्यापकता का अनुभव हो जाए जिसमें से सृष्टि के सभी स्रोत पैदा होते हैं। आत्मा के उस रिश्ते की पहचान हो जाए जो सभी प्राणियों और जीव व निर्जीव को एक सूत्र में पिरोकर रखता है तथा सबके अन्दर जीवन का संचार करता है।

अंधविश्वास की नींव पर टिका हिन्दू समाज

देश में विशेषकर हिन्दू समाज में आज अंधविश्वास की बाढ़ सी आ गई है। प्रायः यह माना जाता है कि जब भी विज्ञान का विकास होता है तब अंधविश्वास कम हो जाते हैं लेकिन ऐसा नहीं हो रहा है। मानसिक रूप से लोग इतने बिमार हो गए हैं कि धर्मगुरू और भविष्यवक्ताओं की फौज खड़ी हो गई है। जगह-2 औरतों में देवियां बोलने लगी हैं, पढ़े-लिखे लोगों को भी भूत-प्रेत का डर सताने लगा है। झाड़-फूक करने वाले अनपढ़ व्यक्ति पढ़े-लिखों पर स्वामित्व कर रहे हैं और धन-दौलत के भण्डार भर रहे हैं। अंधविश्वास के नाम पर धर्म का धंधा एक व्यापार बन गया है। यह धंधा बहुत तेज गति से फल-फूल रहा है। हर रोज एक नया देवी-देवता अस्तित्व में आ रहा है। कहीं भी कोई भी व्यक्ति सड़क या रेल की पटरी के किनारे दो ईंटें रखकर पीर बाबाओं की समाधी बना देता है और उसके चारों तरफ नीला या पीला कपड़ा टांग देता है और बना दिया जाता है एक नई आस्था का केन्द्र जहां पर अनपढ़ और भोले-भाले लोगों की भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया जाता है, इसके साथ ही सरकारी जमीनों पर कब्जा कर लिया जाता है। यह कार्य बहुत ही योजनाबद्ध तरीके से किया जा रहा है, लगता है किसी को भी इसकी चिंता नहीं है। ऐसी हरकतों से समाज व देश को बांटा जा रहा है।

टेलीविजन पर हर रोज कोई न कोई नया किस्सा आ जाता है। कभी तो गणेश जी की मूर्ति दूध पीने लग जाती है और पिच्चासी फिसदी लोग एस.एम.एस. से संदेश भेज रहे हैं कि हां यह एक चमत्कार है, गणेश जी वास्तव में दूध पी रहे हैं। फिर आता है कि पादूका भगवान प्रकट हो गए हैं और पिचहत्तर फिसदी लोग मोबाइल के जरिए संदेश देकर भगवान के चमत्कार की पुष्टि करते हैं। इसके साथ ही अगले कुछ दिनों में अनेक जगह पादूका भगवान प्रकट हो जाते हैं और वहां भी पादुकाएं चलने लगती हैं। टेलीविजन पर देखकर लोगों की भीड़ लग जाती है और शुरू हो जाता है पैसे इकट्ठे करने के लिए कमाई का साधन। फिर पता चलता है कि समाज की स्थिति को देखकर हनुमान जी की मूर्ति की आंखों से आंसू आने लगे हैं और अस्सी फिसदी लोग संदेश भेजते हैं कि हां यह एक सच्चा चमत्कार है। इसके बाद आता है कि भगवान महावीर की सफेद मूर्तियों का रंग सुनहरा हो गया है और इसके साथ ही दर्शन करने वाले लोगों की भीड़ लग जाती है।

जो समाज इतना अंधविश्वासी हो उसे कोई भी जादूगर आकर और अपना जादू दिखाकर लूट सकता है, उनके दिमागों को बदल सकता है। ऐसे लोगों को कोई भी आकर डरा सकता है और धर्म-परिवर्तन करवा सकता है। धर्म के ठेकेदार और राजनेता अपना प्रभाव बनाने के लिए ऐसी बातों को और भी अच्छी तरह उछालते हैं। स्वार्थ की राजनीति और स्वार्थ का धर्म, दोनों का परस्पर हित साधने के लिए गठजोड़ बन गया है।

आज हिन्दू समाज इतने बिखराव की स्थिति में आ गया है जितना सम्भवत: पहले कभी नहीं था। उपनिषदों का ज्ञान जो अद्वैत दर्शन का आधार था वह लगभग लुप्त हो गया है। ऐसा ही समय लगभग 1250 वर्ष पहले भी आया था जब हिन्दू धर्म के ऊपर खतरे के बादल मंडराने लगे थे। हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म में संघर्ष की स्थिति आ गई थी। बौद्ध धर्म के अनुयायी हिन्दू धर्म के शास्त्रों को जलाने लगे थे। विदेशी आक्रमणकारी शक और हूण शासकों के साथ मिलकर बौद्ध अनुयायी हिन्दू धर्म की हानि कर रहे थे। हिन्दू समुदाय वैदिक कर्मकाण्ड को ही धर्म समझता था। उस समय आदि शंकराचार्य का आगमन हुआ। उन्होंने उस समय प्रचलित धर्म की कई मान्यताएं तोड़ डाली। इसके लिए उन्हें उस वक्त के हिन्दू धर्म के प्रकाण्ड पंडितों के साथ-साथ बौद्ध धर्म के विद्वानों से भी शास्त्रार्थ करना पड़ा। शंकराचार्य ने कहा कि हिन्दू समाज अनेक देवी-देवताओं को मानने के सिद्धांत को छोड़े क्योंकि इससे देश में बिखराव आ रहा है। इनके स्थान पर उन्होंने पांच देवताओं (सूर्य, गणेश, शक्ति, शुक्र और विष्णु) की पूजा का प्रावधान दिया जिसे उन्होंने पंचायतन का सिद्धांत कहा। इस सिद्धांत के अनुसार कोई भी व्यक्ति इन पांचों देवताओं में से अपनी श्रद्धा के अनुसार किसी एक देवता को केन्द्र में और बाकि चार को चार दिशाओं में रखकर पूजा कर सकता है। फिर अद्वैत दर्शन में उन्होंने कहा कि जो भी साकार व सगुण रचना है वह सारी मायारूप है जिसका असलीयत

में कोई अस्तित्व नहीं है। परमार्थ में जाने के बाद आकार व सगुण से भरपूर सारी सृष्टि केवल एक भ्रम है, माया है, छल है। यदि व्यक्ति को अपने ब्रह्मरूप का अनुभव करना है तो उसे इस माया व स्वप्न के संसार से बाहर सुषुप्ति और तुरिय अवस्था में जाना होगा जहां सारे आकार समाप्त हो जाते हैं। वहां पर किसी देवता, अवतार या मसीहा का अस्तित्व नहीं रहता। केवल आनन्दरूप व आत्मरूप ब्रह्म का अस्तित्व रहता है।

हम स्वप्न के संसार में अटक गए हैं। हमारी बुद्धि आकारों तक सिमट कर रह गई है। स्वप्न तक आकार व गुण का महत्त्व है, गहरी निद्रा (सुषुप्ति) में जाकर कोई आकार नहीं रहता। कोई देवता, अवतार, पैगम्बर, मसीहा नहीं रहता, केवल आनन्द शेष रह जाता है। जागृत और स्वप्न तक ऊर्जा खर्च होती है लेकिन सुषुप्ति में जाकर थकी हुई ऊर्जा पुनः ताजी हो जाती है इसलिए प्रलय के बाद सारी सृष्टि सुषुप्ति में जाकर समा जाती है, वहां पर ऊर्जा का नवीनीकरण हो जाता है और नए सिरे से सृष्टि की उत्पत्ति शुरू हो जाती है जिस प्रकार हम गहरी निद्रा में जाकर पुनः ताजगी के साथ अपना कार्य करने लगते हैं।

जब तक तीर्थ स्थलों की पूजा है, मन्दिर, मस्जिद, चर्च की पूजा है, किसी भी शास्त्र, अवतार, हजरत या देवी-देवता की पूजा है, तीर्थ-व्रत, हवन-यज्ञ की आराधना है, यह सारी पूजा आकारों की है और जब तक आकार की पूजा है वह अहंकार की पूजा है। जब तक आकार का दर्शन है वह अहंकार का दर्शन है। यह सारी सृष्टि आकारों

की सृष्टि है इसलिए कपिल मुनि, पतंजली ऋषि, श्री अरविन्द, कबीर आदि संत और राधास्वामी संत सम्पूर्ण प्रकृति को अहंकार की अभिव्यक्ति कहते हैं; जो आत्मा (पुरूष) नहीं है बल्कि ये सारे रूप आत्मा के विकार हैं और आत्मा के दर्शन में बाधा डालते हैं। इसलिए स्थूल और सूक्ष्म का जितना भी संसार है सारा मायारूप है। ईस्लाम धर्म में स्वप्न के संसार को आलम-अल-मिथाल अर्थात् मानसिक संसार कहा गया है जो छल-बल और कल्पनाओं का संसार है तथा असीमित है लेकिन हकीकत से इसका कोई वास्ता नहीं है। यहीं तक की आराधना अंधविश्वासों को जन्म देती है।

राधास्वामी पंथ के संत पंडित फकीरचन्द जी महाराज कहते हैं कि एक हिन्दू को स्वप्न में ईसा-मसीह के दर्शन नहीं होते या एक ईसाई और मुसलमान को राम व कृष्ण के दर्शन नहीं होते हैं। इसका अर्थ है कि यहां तक का सारा खेल मन का खेल है। जैसा मन के अन्दर संस्कार पड़ा हुआ है वही जागृत होकर स्वप्न बन जाता है और दिखाई देने लग जाता है। यहां तक का अध्यात्म, यहां तक का धर्म मन का अध्यात्म व मन का धर्म है। काल व माया का धर्म है। जब हम धर्म की गहराई में जाते हैं, आत्मिक नूर व नाद के अन्दर जाते हैं तो सारे आकार समाप्त हो जाते हैं। वहां पर कोई अवतार और पैगम्बर नहीं रहता है बल्कि उनको पैदा करने वाला खुदाई नूर व खुदाई कलमा, वर्ड या नादब्रह्म रह जाता है जिसके अन्दर किसी भी रूप या आकार की स्वीकृति नहीं है।

शंकराचार्य ने बिखरे हुए समाज को 'एक ब्रह्म' के नाम पर इकट्ठा किया लेकिन उनके जाने के बाद फिर हिन्दू समाज बिखरने लगा और इसी कमजोरी का लाभ उठाकर विदेशी ताकतों ने यहां के लोगों को गुलाम बनाया। उस वक्त आए स्वामी दयानन्द जिन्होंने आर्य समाज की स्थापना करके 'एक ईश्वर' की पूजा पर बल दिया। उन्होंने कहा कि सारे देवी-देवता कुछ नहीं हैं बल्कि अलग-2 गुणों के कारण उसी एक ईश्वर के अलग-2 नाम व रूप हैं। एक बार फिर समाज के अन्दर वैचारिक क्रांति आई और वही वैचारिक क्रांति धीरे-2 आजादी की क्रांति में बदल गई। यदि धर्म व अध्यात्म के असली रूप को समझा जाए तो यही व्यक्ति और समाज की ताकत बन जाते हैं और मनुष्य को विशाल नजरिया प्रदान करते हैं।

हिन्दू समाज आज भी उसी मोड़ पर खड़ा है बल्कि आज की परिस्थिति अधिक भयावह है क्योंकि धर्मगुरूओं की एक फौज खड़ी हो गई है जो लोगों को कथा सुनाते हैं, पैसा वसूलते हैं, आश्रम के नाम पर आलीशान महलों में रहते हैं, वातानूकुलित गाड़ियों व जहाजों में चलते हैं और अपने चारों तरफ सशस्त्र पहरेदारों की फौज रखते हैं। राजनीतिज्ञों के साथ उनका गठजोड़ हो गया है। ऐसे में समाज के संगठित होने का प्रश्न ही नहीं उठता है। दूसरा इन गुरूओं का कोई दर्शन नहीं है। भक्त को स्वप्न या ध्यान में गुरू के दर्शन हो जाएं बस यही इनकी अंतिम मंजिल है। स्वप्न का एक और संसार खड़ा हो गया है। लोगों के सामने धर्म का अधूरा रूप पेश किया जा रहा है। यही

अधूरा रूप समाज के अन्दर अंधविश्वासों को बढ़ावा दे रहा है और उन्हें भयभीत कर रहा है जिससे वे किसी भी चीज को चमत्कार का नाम दे देते हैं। यह अज्ञान की चरम अवस्था है और इस समय यह अज्ञान तेज गति से फैल रहा है। महात्मा बुद्ध ने अज्ञान को ही दुःखों का कारण कहा है।

हिन्दू समाज को इस भयावह स्थिति से निकलना होगा। उसे धर्म का सही अर्थ समझना होगा वरना हिन्दू धर्म का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। यदि ऐसा हुआ तो यह संसार की सबसे बड़ी हानि होगी क्योंकि इस धर्म का ज्ञान संसार में सर्वोपरि है जो दूसरे धर्मों की तरह धरती पर स्वर्ग के नाम पर आसक्ति में नहीं फंसाता बल्कि संसार को अनाशक्ति का उपदेश देता है जो अपने आप में अनूठा ज्ञान है। यह ज्ञान किसी व्यक्ति के ऊपर अधिकार नहीं करता, उसका धर्म परिवर्तन नहीं करता बल्कि सब बंधनों से आजाद करता है और धार्मिक सहिष्णुता सिखाता है।

हम श्रीमद्भगवद् गीता से भी शिक्षा नहीं लेते हैं जो सबसे श्रेष्ठ और पवित्र ग्रंथ माना जाता है। इसमें कहा गया है कि जो भक्त अपनी श्रद्धा के अनुसार जिस देवता की पूजा करते हैं वे अन्तिम समय में उन्हें ही प्राप्त होते हैं, ये लोग अल्पबुद्धि वाले होते हैं और उनकी पूजा का फल भी नाशवान होता है तथा ऐसे लोग पुण्यफल भोगने के बाद मृत्युलोक में लौट आते हैं। इस प्रकार वैदिक कर्मों का आश्रय लेने वाले कामी विषयवासना युक्त पुरूष बार-बार आवागमन को ही प्राप्त होते रहते हैं। (अध्याय 7/21-24, अध्याय 8/6, 21)।

राधास्वामी।

जिज्ञासुओं के लिए प्रश्न

- क्या धर्म रोजी-रोटी दे सकता है?
- क्या अध्यात्म से दु:खों का छुटकारा हो सकता है?
- क्या अध्यात्म धन और आश्रमों का मोहताज हो गया है?
- क्या सत्संग केवल धन कमाने का साधन बन गया है?
- क्या धर्म देश और समाज को सुरक्षा दे सकता है?
- क्या धर्म बिखरे व्यक्तित्व और समाज को जोड़ सकता है?
- क्या परमात्मा अमीर लोगों की धरोहर बन गया है?
- अध्यात्म क्या है? आत्मा का स्वरूप क्या है?
- क्या अध्यात्म, विज्ञान और संसार एक दूसरे के विरोधी हैं?
- क्या शरीर, मन व आत्मा अलग-अलग हैं?
- कुण्डलीनी जागरण क्या है?
- अनहद शब्द व धुन में क्या अन्तर है?
- परम्परावादी और आत्मनिष्ठ धर्म में क्या अन्तर है?
- कर्मकाण्ड बन्धन व दु:ख का कारण क्यों बन जाता है?
- सभी धर्मों की उत्पत्ति मानसिक संसार से है, कैसे?
- अच्छी संगत से बुरे कर्म कैसे कट जाते हैं?
- सतगुरू सूली का दर्द सूल में कैसे बदल देता है?
- सिद्ध पुरूष की इच्छा शक्ति मजबूत क्यों हो जाती है?
- सृष्टि की प्रलय व शरीर की मृत्यु का क्या सम्बन्ध है?
- अभ्यास की अट्ठारह मंजिलें कौन सी हैं?
- क्या भाग्य को बदला जा सकता है?
- क्या मन व अंहकार वास्तव में बुरे हैं?
- अध्यात्म के लिए विशाल दृष्टि जरूरी क्यों?
- सुरत-शब्द योग का मार्मिक रहस्य क्या है?
- व्यक्तिगत अस्तित्व व ब्रह्माण्ड में कितनी समानता है?
- ध्यान से समस्याओं का समाधान कैसे मिलता है?
- ध्यान से संसार का विनाश भी हो सकता है, कैसे?
- प्रेतात्मा व देवात्मा के प्रकट होने का कारण व अर्थ
- उत्पत्ति व प्रलय का वैज्ञानिक व अध्यात्मिक आधार क्या है?
- नाम व ध्यान का विज्ञान क्या है?
- कामधेनू गाय व कल्ववृक्ष की प्राप्ति क्या है?
- असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति कैसे हो?

.....इत्यादि प्रश्नों के उत्तर जानिऐ?

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र

पुस्तक सूची

1. सतगुरू ताराचन्द जी महाराज के 101 अनमोल रत्न
2. रूहानी पत्र व सतगुरू आदेश
3. आत्मिक सफर और रूहानी मंजिलें (प्रश्नोतरी)
4. संत अवतरण
5. सम्यक समाधि : आत्मिक सफर की कहानी
6. पुरूष-प्रकृति
7. ईसा-मसीह कौन हैं?
8. युद्ध और जीवन दर्शन
9. अवतार अवतरण रहस्य
10. अध्यात्म से इच्छा शक्ति मजबूत कैसे होती है?
11. प्रेम और भक्ति का शिखर
12. सत्य और धर्म का अनुभव क्या इसी जन्म में संभव है?
13. टूटते रिश्ते बढ़ता अंधविश्वास व अध्यात्म
14. बच्चों पर सत्संग का प्रभाव
15. विश्व की समस्याएं और आध्यात्मिक समाधान
16. पृथ्वी पर ईश्वर का साम्राज्य
17. क्या धर्म, विज्ञान और संसार अलग-अलग हैं?
18. मनुष्य के लिए अध्यात्म जरूरी क्यों ?
19. आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य